पूज्य लालचंदभाई के प्रवचन
श्री समयसार गाथा १४४
बेंगलोर, तारीख १९८८, प्रवचन LA२०५

... रास्ता मिलता नहीं है, तो ज्ञानी धर्मात्मा-अनुभवी कोई मिल जावे,

मुमुक्षु: वो आता है न साहब - Where there is a will there is a way.

पू. लालचंदभाई: हाँ, बस!

मुमुक्षु: जहाँ चाह है वहाँ राह है।

पू. लालचंदभाई: क्या?

मुमुक्षु: जहाँ भावना होती है वहाँ मार्ग मिल जाता है।

पू. लालचंदभाई: मार्ग मिलता है। English (अंग्रेजी) में, बराबर! ठीक है! रुचि चाहिए, रुचिवाले को मार्ग मिलता है।

मुमुक्षु: हमारा सौभाग्य था आपके दर्शन होने थे।

पू. लालचंदभाई: भैया! हमारे दर्शन से कुछ आपका काम बननेवाला नहीं है।

मुमुक्षु: न बने, वो बात दूसरी! कम से कम ज्ञान में वृद्धि तो होगी।

पू. लालचंदभाई: मगर हम जो कहते हैं, वो मुनि-महाराज कहते हैं; क्या कहते हैं वो हम कहते हैं। तो उसे लक्ष में लो, तो काम हो जायेगा आपका, बस। ये कुंदकुंदाचार्य भगवान हैं, समर्थ आचार्य हो गये।

श्री समयसार परमागम शास्त्र है। इसके कर्ता-कर्म अधिकार की last (आख़िर) की गाथा। ये closing (उपसंहार) होता है कर्ता-कर्म अधिकार का, १४४ वीं गाथा है। १४४। तो government (सरकार) की भी १४४ कलम लागू पड़ती है तो shoot at sight (दिखने पर मार देना) हो जाता है न? ऐसा कर्ता-कर्म अधिकार की last की गाथा है, आख़िर की।

कर्ता-कर्म अधिकार में क्या भूल हो गई कि आत्मा- मैं कर्ता हूँ और पुण्य और पाप के जो परिणाम होते हैं, वो मेरा कार्य, मेरा कर्तव्य, मैं करनेवाला कर्ता और ये पुण्य-पाप का परिणाम मेरा कार्य, मेरा कर्म है - ऐसी अनादिकाल से जीव की विपरीत मान्यता चलती आ रही है।

सचमुच, आत्मा कर्ता और आत्मा का ज्ञान कर्म जब बनते हैं, तब भव का अंत आता है। मोक्ष का मार्ग, आत्मा का ज्ञान और आत्मा का श्रद्धान और आत्मा का आचरण - वो निश्चय मोक्षमार्ग है, सच्चा मोक्षमार्ग! और मैं कर्ता और ये पुण्य-पाप मेरा परिणाम, मेरा कर्म, सब मैं करनेवाला हूँ; आत्मा जाननेवाला होने पर भी, ज्ञाता-द्दष्टा होने पर भी; अपने आप अनादिकाल से दूसरे के उपदेश बिना कि मैं कर्ता हूँ ऐसा अगृहीत मिथ्यात्व, अनादिकाल से, निगोद से संस्कार आज तक का है। कुछ करना तो चाहिए। क्या करना है तेरे को? आहाहा! जानना चाहिये कि करना चाहिये? और जानने में पर को जानना कि आत्मा को जानना? इतनी सी छोटी बात है, लंबी तो बात है ही नहीं। समझ से काम होता

है। ज्ञान-कला से ज्ञान की प्राप्ति होती है।

तो कुदरती आप आज आ गए। आप भाग्यशाली हैं कि ये जो गाथा है, सुबह में थोड़ी चली थी। फिर से मैं लेता हूँ आपके लिए।

तो इसमें आचार्य भगवान को एक प्रश्न किया कि 'प्रभु! आप बड़ी-बड़ी बात करते हैं आत्मा का अनुभव करो, आत्मा का अनुभव करो। और आत्मा का अनुभव करो वो तो ठीक है, हमको मंजूर है, मगर वो तो निश्चय की बात आप करते हैं'।

तो आचार्य भगवान कहते हैं कि 'हाँ! हम निश्चय की बात करते हैं कि आत्मा का ज्ञान करो, आत्मा का श्रद्धान करो'।

तो शिष्य ने पूछा कि 'वो निश्चय तक मैं न पहुँचूँ, वहाँ तक व्यवहार तो बताओ कुछ, वहाँ पहुँचने के लिए। पहुँचने का मेरा भाव आपने कहा तो मंजूर है मेरे को, कि आत्मा का ज्ञान-श्रद्धान करना, वो मुझे मंजूर है। मगर मैं कमजोर हूँ, मैं गृहस्थ हूँ। आहाहा! मैं दीक्षा तो ले सकता नहीं हूँ। और दीक्षा लेने के पहले कोई धर्म की शरुआत होती है?'

आचार्य भगवान: कि हाँ! गृहस्थ अवस्था में सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हो जाता है।

शिष्य: अच्छा! तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान का क्या स्वरूप?

आचार्य भगवान: कि आत्मा का अनुभव करो।

तो शिष्य ने कहा 'प्रभु! आत्मा का अनुभव करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है वो बात तो सही है, मगर वो तो निश्चय आपने बताया। परंतु निश्चय के पहले जैनदर्शन में कोई व्यवहार होता है कि नहीं, निश्चय की प्राप्ति करने के लिये? हेतु तो आपने कहा, मंजूर है। वहाँ मैं पहुँच नहीं सकता हूँ, तो इसके लिए कोई व्यवहार है कि नहीं? जिनागम में सर्वज्ञ भगवान ने कोई व्यवहार बताया है?'

की हाँ। तो आचार्य भगवान कहते हैं कि 'हाँ! तेरा प्रश्न अच्छा है। तेरी उलझन मैं समझ गया। तो मैं तेरे को व्यवहार बताता हूँ प्रथम, बाद में निश्चय बताऊँगा। दो बात बताऊँगा, व्यवहार और व्यवहार के बाद निश्चय।'

शिष्य: 'तो व्यवहार क्या है बताओ कृपया करके।'

उसकी जिज्ञासा व्यवहार की थी। उसको ख्याल में ऐसा था कि आचार्य भगवान ऐसा बतायेंगे कि व्रत करो, तप करो, पूजा करो, दान करो, शील करो - अंगीकार करो, यात्रा करो, ऐसा कुछ बतायेंगे - ऐसी जिज्ञासा अंदर में पड़ी थी। तो निकला दूसरा, व्यवहार दूसरा निकला। वो क्या व्यवहार निकलता है? ये सुनने जैसी बात है।

व्यवहार की बात, सचमुच जिनागम क्या व्यवहार कहता है? निश्चय की बात तो सुनी ही नहीं, अनुभव किया भी नहीं। मगर जिनागम में निश्चय की प्राप्ति के लिए, प्राप्ति तो निश्चय की करनी है। चलकर झाँसी जाना है, मगर झाँसी जाने के पहले कोई स्टेशन आता है कि सीधा झाँसी उड़कर चला जाऊँ मैं? कि नहीं, स्टेशन आता है। सुन! व्यवहार वो स्टेशन है, उतरना नहीं है वहाँ, टिकिट तो झाँसी की है। हें?

मुमुक्षु: बहुत सुंदर!

पू. लालचंदभाई: तो उसकी, निश्चय की प्राप्ति के पहले क्या व्यवहार होता है - कृपा करके मेरे को समझाओ। जिज्ञासु जीव ने प्रश्न किया। उसको, जिज्ञासु जीव को जवाब देते हैं आचार्य भगवान- सुन! गाथा १४४ - ये संस्कृत में है और संस्कृत का अनुवाद है। उस संस्कृत का अनुवाद किया है, जयचंद पंडित जी हो गए जयपुर में, उन्होंने अनुवाद किया। वो सोनगढ़ का अनुवाद नहीं है, वो जयपुर का अनुवाद है। ढूँढारी भाषा में था, बाद में ढूँढारी भाषा का अक्षर-अक्षर ये गुजराती। हम गुजराती लोगों के लिए ये अनुवाद किया है।

तो आचार्य भगवान क्या कहते हैं कि **प्रथम,** ये व्यवहार बताते हैं। **प्रथम,** यानि शुरुआत। प्रथम यानि समझे? शुरुआत कैसे करें? धर्म की शुरुआत आप कहते हो कि निश्चय से होती है। अच्छा! निश्चय से होती है मगर निश्चय तक हम पहुँचे नहीं। तो पहले कुछ व्यवहार तो हमको, व्यवहारी-जन को बताओ। तो व्यवहारी-जन को व्यवहार बताते हैं कि **प्रथम,** यानि शुद्धात्मा का अनुभव करने के पहले, **श्रुतज्ञानके अवलम्बनसे** यानि द्रव्यश्रुत के अवलंबन के द्वारा, यानि जिनवाणी का अवलंबन लेकर, आत्मा का अनुभव करने के पहले तू ऐसा कर।

मुमुक्षु: द्रव्यश्रुत माने जिनवाणी का अवलंबन?

पू. लालचंदभाई: जिनवाणी, द्रव्यश्रुत यानि जिनवाणी। जिनवाणी यानि आत्मानुभवी पुरुष ने कहा उसका नाम जिनवाणी है। मिथ्यादृष्टि का बनाया हुआ वो चोपड़ा (किताबें) है, शास्त्र नहीं है। समझे? Novel (उपन्यास) है। मगर जिसको आत्मा का अनुभव हो गया है - कुंदकुंदाचार्य भगवान, अमृतचंद्र आचार्य, तो ऐसे जो अनुभव कर लिया है आत्मा का जिसने, उनकी जो वाणी है उसका नाम जिनवाणी है। जिनेन्द्र भगवान की वाणी! मूल तो सर्वज्ञ भगवान के श्रीमुख से निकली हुई दिव्यध्वनि है, तो गणधर भगवान ने झेली और उत्तरोतर आचार्य भगवान तक वो वाणी, जिनवाणी आई। आहाहा! ऐसे तो हिमालय से निकलती है न गंगा, ऐसा आता है न? अपनी स्तुति में।

मुमुक्षु: **वीर हिमाचल तें निकसी, गुरु गौतम के मुख-कुंड ढरी है** (पं. भूधरदास जी)।

पू. लालचंदभाई: हाँ! वो जिनवाणी! **प्रथम, श्रुतज्ञानके** द्वारा यानि द्रव्यश्रुत के द्वारा, इसके **अवलम्बनसे** पहले निमित्त बताया। कि निमित्त को मानते हो कि नहीं तुम? ये निमित्त की बात है। जिनवाणी निमित्त है, उपादान नहीं है। उपादान तो इधर (अंदर) है।

मुमुक्षु: द्रव्यश्रुत निमित्त हुआ?

पू. लालचंदभाई: द्रव्यश्रुत निमित्त है और आत्मा उपादान है। निमित्त है जिनवाणी। उपादान तक नहीं पहुँचता है इसके लिए प्रथम क्या करना? कि जिनवाणी के द्वारा कहा हुआ आत्मा का स्वरूप, उसको जानो-पहचानो, निर्णय करो, ऐसा कहते हैं।

श्रुतज्ञानके अवलम्बनसे ज्ञानस्वभाव आत्माका निश्चय करके, अनुभव के पहले, व्यवहार! आहाहा! वो व्यवहार है। मैं ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ ऐसा जिनवाणी ने कहा, जिनेन्द्र भगवान ने कहा, जिनवाणी ने कहा, संतों ने कहा कि तेरा आत्मा ज्ञानस्वभावी है। तू रागी-द्वेषी कर्मवाला-बंधवाला मनुष्य-स्त्री-पुरुष, तू नहीं है। वो तो स्वांग है, वो तो सब निकल जाता है। वो तो निकलनेवाला है, इधर पड़ा रहेगा। ये लालचंदभाई का देह है न, कहने में आता है; लालचंदभाई का तो नहीं है, पुद्गल का है

तो भी कहने में आता है। तो उसको तो जला देंगे सब। आत्मा कहाँ जलता है? आत्मा तो निकल जायेगा। ऐसे आठ कर्म और राग-द्वेष-मोह की जो परिणति आस्रव है वो भी स्वांग है, निकल जाता है। वो आत्मा का मूल स्वरूप-स्वभाव नहीं है।

तो प्रथम आत्मा का अनुभव करने के पहले तो ऐसे निर्णय-निर्धार कर कि मैं ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ। ज्ञानस्वभावी आत्मा होने से मैं ज्ञाता हूँ, कर्ता नहीं हूँ। पुण्य-पाप का करनेवाला आत्मा नहीं है। जो पुण्य-पाप का करनेवाला आत्मा मानता है वो अज्ञानी, अप्रतिबुद्ध, मिथ्यादृष्टि है। जिसको मिथ्यादृष्टि रहना हो, वो माने कि पुण्य-पाप मैं करता हूँ और मैं भोगता हूँ। बाकी जिसको संसार नहीं चाहिए उसको क्या करना चाहिए? कि मैं ज्ञान करनेवाला हूँ। पुण्य-पाप का करनेवाला मैं नहीं हूँ क्योंकि आत्मा ज्ञानमयी है। इसमें लिखा है **ज्ञानस्वभाव आत्माका** निर्णय करो, यानि भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म से मैं रहित हूँ, मैं ज्ञानमयी हूँ, ऐसा निर्णय करो।

जैसे **'घीका घड़ा'** होने पर भी घड़ा तो **माटीमय है, घीमय नहीं** (समयसार गाथा ६७) है, माटीमय है और घीमय नहीं है। ऐसे (निज) आत्मा, 'रागी जीव' ज्ञानमय है और रागमय नहीं है। ऐसे प्रथम, अनुभव के पहले, धर्म की शुरुआत करने के पहले ऐसा व्यवहार आ जाता है। आ जाता है, आकर टिकता नहीं है।

मुमुक्षु: जाने के लिए आ जाता है।

पू. लालचंदभाई: जाने के लिए आता है। जब वो निर्णय कर लिया आत्मा का, कि मैं ज्ञानस्वभावी हूँ, बाद में process (विधि) अभी बतायेंगे; निश्चय की। व्यवहार के बाद निश्चय की process बतायेंगे। जब निश्चय आता है तब वो व्यवहार चला जाता है।

मुमुक्षु: पहले निर्णय?

पू. लालचंदभाई: पहले निर्णय, बाद में अनुभव। यथार्थ निर्णय! निर्णय भी यथार्थ निर्णय, जैसा सर्वज्ञ भगवान ने अपने आत्मा का स्वरूप देखा-जाना ऐसा निर्णय होना चाहिए।

ये कुंदकुंद भगवान का, आचार्य का कथन, शास्त्र, भव के अंत का कारण है। समझे वो पाए, नहीं समझे वो रह जाता है। वो तो लिखकर चले गए, अभी तो स्वर्ग में हैं, स्वर्ग से निकलकर अरिहंत होकर सिद्ध होंगे, एकावतरी हैं - एक ही भव है! आहाहा! लौकांतिक देव हुए कुंदकुंदाचार्य, और अभी ब्रह्मचारी हैं वो, लौकांतिक देव। वहाँ से निकलकर ध्यान में मग्न होकर अरिहंत दशा प्रगट होकर सिद्ध हो जायेंगे - ऐसे पुरुष हो गए। आहाहा! २००० वर्ष पहले मद्रास से दूर, ८० मील दूर पोन्नूर-हिल है। पोन्नूर-हिल है, देखा है? नहीं देखा। पोन्नूर-हिल है, मद्रास से ८० मील दूर। तो वहाँ उनकी तपोभूमि है। वहाँ से महाविदेहक्षेत्र गए थे, सीधा। वहाँ से, महाविदेहक्षेत्र से आकर उन्होंने ये प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, अष्टपाहुड़ आदि शास्त्र सब लिखे हैं।

ऐसे समर्थ आचार्य भगवान अज्ञानी प्राणियों को फरमाते हैं कि प्रथम क्या करना? कि प्रथम 'मैं ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ'; मेरे आत्मा में, भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म से रहित हूँ मैं - वो तो तीनों जड़ भाव हैं; मैं तो चैतन्य हूँ। मैं ज्ञानमय हूँ और रागमय मैं नहीं हूँ। ऐसे ज्ञानस्वभावी आत्मा का निर्णय कर ले, निश्चय कर ले, निर्धार कर ले। व्यवहार श्रद्धा की बात चलती है अभी। आहाहा!

पुण्य करते-करते धर्म होगा, व्यवहार श्रद्धा नहीं है, वो तो मिथ्यात्व पोषक भाव है। आहाहा! जगत को कठिन लगे। लगे तो लगो! संतों को क्या? उनको तो कोई चंदा करना नहीं है। संतों को कुछ लेना है अपने पास से, पैसा-वैसा? नहीं लेना है। आहाहा! वो तो जैसा स्वरूप अपने को प्राप्त हुआ वो, उसको सबको बताते हैं कि ऐसा तेरा भी स्वरूप है। बस!

तो प्रथम निर्णय कर, निर्धार कर, वो व्यवहार श्रद्धा-व्यवहार ज्ञान। वो ज्ञान भी व्यवहार और श्रद्धा भी व्यवहार, निश्चय नहीं; संवर नहीं है उसमें, धर्म नहीं है; निर्णय किया, अभी धर्म नहीं है। वो तो विकल्प है, वो तो इंद्रियज्ञान में निर्णय हुआ, आत्मा का अनुभव नहीं है निर्णय में। अच्छा! निर्णय करने के बाद कोई process है? कि हाँ! सुन! ध्यान देकर सुन तो सही पहले कि क्या स्वरूप है? आहाहा! तेरी कल्पना अभी छोड़ दे। तू जो मानता है धर्म की क्रिया, वो एक बाजू रख और मेरी बात सुन। दो बात अपने सामने आती हैं तो परीक्षा करके, तेरे को अनुभव करके प्रमाण करना। मैं कहता हूँ, बस। आचार्य भगवान ने कहा तू **प्रमाण करना** (समयसार गाथा ५)। आहाहा! **अनुभव** से **प्रमाण करना**। मेरे कहने से नहीं मानना।

तो आचार्य भगवान प्रथम निर्णय की बात बताते हैं - व्यवहार श्रद्धा, व्यवहार ज्ञान। आहाहा! बाद में प्रथम और पश्चात् - एक लाइन में प्रथम और एक लाइन के आखिर में पश्चात्। आहाहा! शब्द लिखा।

मुमुक्षु: निर्णय के पश्चात्।

पू. लालचंदभाई: निर्णय के पश्चात्! निर्णय झूठा हो तो?

मुमुक्षु: निर्णय प्रथम।

पू. लालचंदभाई: निर्णय प्रथम! और निर्णय विपरीत हो तो? तो अनुभव नहीं होगा। निर्णय यथार्थ होना चाहिए। आहाहा! **प्रथम** और पश्चात्। भाग्यशाली हैं बहन आप, इस गाथा में आ गए। हमारे भाई विष्णुकूमारजी भाग्यशाली हैं। कि प्रथम क्या करना सारे जगत का प्रश्न है। सारे जगत का ये प्रश्न है, प्रथम क्या करना। कोई थोड़ी बात तो बताओ व्यवहार की प्रथम क्या करना?

१५-२० साल पहले हमारे ऊपर एक आफत आई, हमारे ऊपर। हम तो बहुत साल से वाँचन (प्रवचन) करते थे। तो राजकोट में हमारे ऊपर आफत आ गई। निश्चय-प्रधान कथन मेरी शैली। तो एक भाई ने कहा, बड़ा भाई, ऐसा मुमुक्षु में। समझे? प्रतिष्ठित! उन्होंने कहा कि लालचंदभाई, आप की बात निश्चय की तो बराबर लगती है, मगर थोड़ा-थोड़ा व्यवहार की बात आप साथ में करो न, तो हमको ठीक पड़े। व्यवहार का पक्षवाला व्यवहार की माँग करता है। कोई परेशानी नहीं!

मुमुक्षु: पक्ष वाला।

पू. लालचंदभाई: पक्ष वाला! हाँ!

तो मैंने कहा कल से मैं व्यवहार की बात बताऊँगा। तो ये बताया कि 'भेदज्ञान करना सो व्यवहार है; अभेद का अनुभव करना सो निश्चय है'। लिख लेना! वो बात भूलना नहीं - भेदज्ञान करना सो व्यवहार है। नीलम भी लिखती है, वहाँ भी लिखती है, वो भी लिखती है। लिखो! आहाहा!

भेदज्ञान करना सो व्यवहार है। भेदज्ञान दो के बीच में होता है। मैं ज्ञानमय हूँ और मैं रागमय

नहीं हूँ। मैं सुखमय हूँ और दुखमय नहीं हूँ। आहाहा! मैं अबद्ध हूँ और कर्म से बंधा हुआ नहीं हूँ। ऐसे-ऐसे भेदज्ञान! भेदज्ञान आप समझ गए? भेदज्ञान समझ गये न, दो के बीच में भेदज्ञान होता है। आत्मा और अनात्मा, एक आत्मा और दूसरा भाव अनात्मा। अनात्मा मैं नहीं हूँ, मैं तो आत्मा हूँ। ऐसे भेदज्ञान का विचार करना सो व्यवहार है। आप भाग्यशाली हैं कि ये व्यवहार की बात आपको मिली। आहाहा!

बाद में अभेद का अनुभव करना सो निश्चय। भेदज्ञान का विचार सो व्यवहार और अभेद का अनुभव सो निश्चय। भेदज्ञान का विचार सो व्यवहार और अभेद का अनुभव सो निश्चय। ये लिखती है। फिर से, फिर से पढ़ना। लिखकर उनको बहन को बताओ। बराबर? समझ में आ गया अभी?

मुमुक्षु: अभेद का अनुभव सो निश्चय (और) भेदज्ञान का विचार व्यवहार।

पू. लालचंदभाई: भेदज्ञान का विचार वो व्यवहार। भेदज्ञान का विचार तो आता है।

मुमुक्षु: दो वस्तुओं में चलता है मतलब?

पू. लालचंदभाई: दो वस्तुओं में भेदज्ञान होता है - ये (अंदर) स्व और एक (बहिर) पर है। समझे? आप चैतन्यमय आत्मा हैं और देह आपका नहीं है। लड़का आपका नहीं है, ये विष्णुकुमार आपके नहीं हैं - भेदज्ञान दो के बीच में होता है न।

मैं ज्ञानमयी हूँ और ज्ञान के अलावा मेरी कोई चीज (नहीं है)। ये मकान जर - जवाहरात, ये गाड़ी, स्त्री, कोई मकान मेरा नहीं है। आहाहा! मैं ज्ञानमयी आत्मा हूँ, ये कोई चीज मेरी नहीं है। उसके प्रति उदास रहना चाहिए, अंतर में से। अंदर में से उदास! वो ऐसा आता है कि ये लड़का मेरा, मगर अंदर में मेरा नहीं है। अंदर की बात है, રમત (खेल) अंदर की।

भेदज्ञान अंदर चलता है। रसोई करते-करते भेदज्ञान चलता है। ऐसा मंदिर में जाओ तो भेदज्ञान करना, ऐसा नहीं। चलते-फिरते, सोते-उठते-बैठते भी भेदज्ञान का विचार, सो व्यवहार।

मुमुक्षु: हर समय।

पू. लालचंदभाई: हर समय। बस! उसमें एक पैसा का खर्च नहीं है। खर्च नहीं है, खर्च समझे न? पैसा देना कुछ नहीं है। आहाहा! जैसा स्वरूप है ऐसा विचार करो कि मैं ये (स्व) हूँ और ये नहीं हूँ। बस इतना ही! आहाहा! इसका नाम व्यवहार। शुभभाव करना उसका नाम अज्ञान, लिखो। शुभभाव करने का अभिप्राय, उसका नाम अज्ञान।

मुमुक्षु: करने का अभिप्राय।

पू. लालचंदभाई: करने का अभिप्राय! अभी लिखाता हूँ, वो वाक्य बाकी है। (शुभभाव) करने का अभिप्राय उसका नाम अज्ञान और शुभभाव आवे, उसको जानना उसका नाम व्यवहार। क्या कहा?

मुमुक्षु: शुभभाव को जानना उसका नाम व्यवहार।

पू. लालचंदभाई: शुभभाव करने का अभिप्राय उसका नाम अज्ञान है - ये मंत्र है। ये सब संतों ने कहा है।

मुमुक्षु: इसमें क्या कर्तापने की बुद्धि आ जाती है!

पू. लालचंदभाई: कर्तापने की बुद्धि आ जाती है बहन, ज्ञाता नहीं रह सकते आप। जो जाने सो कर्ता नहीं है और करे वो जानता नहीं। आता है, एक श्लोक आता है न।

करै करम सोई करतारा। जो जानै सौ जाननहारा॥
जो करता नहि जानै सोई। जानै सो करता नहि होई॥३३॥

(नाटक समयसार – कर्ता कर्म क्रियाद्वार, श्लोक ३३)

वो ही जो बनारसीदास का है श्लोक। जो जानता है वो करता नहीं है और करता है वो जानता नहीं है। ज्ञाता नहीं रहता है। कर्ताबुद्धि तो पाप है बड़ा। ये आपके लिए नहीं आया है। हमारे क्रम में आया। सुबह में वो चल गया। सुबह में वो बात सब व्यवहार की चल गई। हम तो निश्चय के आधार में आ गए थे मगर फिर से आपके लिए लिया। समझे? हमारे यहाँ ये क्रम चलता है न १४२-४३-४४ तो ये १४४ तक सुबह में आया था। पक्षातिक्रांत होने पर आत्मा का अनुभव होता है - ऐसी सूक्ष्म बात चली बहुत।

मुमुक्षु: पक्षातिक्रांत का मतलब?

पू. लालचंदभाई: पक्षातिक्रांत का मतलब ये है कि आपने निर्णय किया कि मैं ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ। मैं ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ, आपने जो निर्णय किया, वो पक्ष है; उसमें आत्मा का अनुभव नहीं होता है, वो विकल्प है। विकल्प के द्वारा निर्णय किया आपने, विकल्प के द्वारा, मानसिक ज्ञान के द्वारा। ज्ञान से अनुभव नहीं हुआ। मानसिक ज्ञान के द्वारा, आपने जिनवाणी के द्वारा....

मुमुक्षु: माने इंद्रियों के द्वारा।

पू. लालचंदभाई: इंद्रियों के द्वारा आपने निर्णय किया कि मैं ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ। ऐसा जो विकल्प उठता है उसका नाम निश्चयनय का पक्ष है। व्यवहारनय का पक्ष उसकी तो बात छोड़ो, वो तो सम्यक् सन्मुख ही नहीं है। मगर निश्चय का पक्ष आ गया आपको कि मैं तो ज्ञानानंद आत्मा हूँ, ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ - ऐसा जो विकल्प उठाया आपने, इसका नाम निश्चयनय का पक्ष है। वो विकल्प छूटता है और अनुभव होता है, उसका नाम पक्षातिक्रांत है। आहाहा!

मुमुक्षु: अनुभव के लिए पक्षातिक्रांत।

पू. लालचंदभाई: हाँ! जरूरी है। अनुभव करने के लिए पक्षातिक्रांत करना है। पक्ष में आता है मगर पक्ष में रुकना नहीं; पक्ष भी छोड़ देना।

मुमुक्षु: पक्ष रहेगा तो फिर विकल्प है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! विकल्प है। विकल्प में तो अनुभव नहीं होता है, वो तो आकुलता है। वो आएगा इसमें (गाथा १४४), आकुलता है। इसमें ही है पाठ। सारी १४४वीं गाथा बहुत A to Z (शुरू से अंत तक) सारा स्वरूप है - मिथ्यादृष्टि को प्रथम क्या करना, बाद में क्या करना, अनुभव की process बताई। बाद में अनुभव क्या हुआ और अनुभव का फल क्या आया, सब एक गाथा में है।

मुमुक्षु: माने अनुभव के सन्मुख है वो पक्षातिक्रांत है?

पू. लालचंदभाई: पक्ष में आया, पक्ष में आया... पक्ष दो प्रकार का है। ऊपर-ऊपर का पक्ष आता है और एक अंदर का निर्णय वाला का पक्ष आता है, अपूर्व पक्ष! अनंतकाल से शुद्धनय का पक्ष आया नहीं है। समयसार की ११ वीं गाथा में लिखा है कि **शुद्धनय का पक्ष जीव को कभी आया नहीं** है। व्यवहार का पक्ष अनादि का है और **शुद्धनय का पक्ष कभी आया नहीं** है। उसका अर्थ क्या है कि

जैसा अपना शुद्धात्मा है, ऐसा अपना ज्ञान-श्रद्धान में यथार्थ निर्णय आ जावे। यथार्थ निर्णय के बाद अनुभव होता है, जो निर्णय में विपरीतता हो तो अनुभव नहीं आएगा। ऊपर-ऊपर का निर्णय अलग बात है और अंदर का निर्णय आवे वो अलग बात है। ऊपर-ऊपर का निर्णय धारणा में जाता है। धारणा ज्ञान में तो कोई फायदा नहीं है, धारी रखा आपने बस।

शक्कर मीठी है, शक्कर मीठी है, शक्कर मीठी है। स्वाद आता है आपको विष्णुकुमार जी? नहीं आयेगा। शक्कर मीठी है, मीठी है बोलो आप भाषा, स्वाद नहीं आता है। तो स्वाद करने के लिए क्या करना चाहिए? खाना पड़ेगा बस! ऐसा। शक्कर मीठी है, मीठी है वो शक्कर का पक्ष है - वो दृष्टांत देता हूँ। शक्कर मीठी है, शक्कर मीठी है, शक्कर मीठी है, तो आप सब पदार्थों से छूट गए, एक शक्कर पर आए। शक्कर खाना है। तो खाने के पहले उसका स्वभाव क्या है? मीठी है, मीठी है, मधुर है, स्वादिष्ट है, उसका नाम पक्ष। और वो शक्कर का 'मीठी है' ऐसा विकल्प छोड़कर जीभ पर रखो, जब जीभ पर रखता है तब पक्ष छूट जाता है, शब्द छूट जाता है। जो शब्द बोलो तो अनुभव नहीं होगा।

स्वाद लेता है कोई शक्कर का, तो मैं पूछूँ भैया! शक्कर कैसी है विष्णुकुमारजी? तो आप क्या कहेंगे? अभी मत (पूछो)! अभी तो मेरे को खाने दो। बाद में मैं बताऊँगा, खाने के बाद। अभी तो मेरे को रस - स्वाद लेने दो शक्कर का। शक्कर का स्वाद लेते समय विकल्प नहीं उठता है - ये जानने जैसी बात है, समझने जैसी बात है। आहाहा! ये दिगम्बर संतों की कही हुई बात है, किसी के घर की बात नहीं है।

हम तो पहले स्थानकवासी थे। हमने तो ये जो गुरुदेव - कानजी स्वामी को अपनाया, वो परीक्षा करके अपनाया। वर्णीजी के पास मैं गया था, गणेशप्रसाद वर्णीजी के पास। आज से ३५ वर्ष पहले गया था। ७८ साल की उम्र हुई शरीर की हुई अभी, ७८। ३५ साल पहले मैं गया था, गणेशप्रसाद वर्णीजी उस समय ईसरी में थे। प्रसिद्ध (व्यक्ति)! उनको २० प्रश्न पूछे थे मैंने, २० प्रश्न, questions पूछे थे। क्योंकि मैं (तो) स्थानकवासी था, अभी धर्म का परिवर्तन करना था। तो स्थानकवासी सच्चा कि दिगम्बर सच्चा? निर्णय तो अपने को करना चाहिए न! हें? ऐसी बात है। सब जगत के लोग चावल लेने जाते हैं। तो चावल लेने के लिए दो-चार दुकान खोज करते हैं (कि) कैसा है, भाव कैसा है, माल कैसा है। धर्म के लिए कोई परीक्षा नहीं करता है। हाँ जय महाराज! नहीं चले 'जय महाराज'।

मैं एक दृष्टांत देता हूँ, जरा दृष्टांत संसारी जीव को लागू पड़े इसलिए। वो तो दृष्टांत है, उस दृष्टांत में कोई माल नहीं है, ध्यान रखना। दृष्टांत में माल नहीं है। एक भाई ने सगाई की। सगपण किया, मतलब सगाई की। लग्न बाकी है (और) फिर लग्न भी हो गया। ठीक! अभी वो तो पति-पत्नी हो गए। तो कभी कोई पति ठगा जाता है और कभी पत्नी भी ठगा जाती है। एक जैसा तो मेल, कभी-कभी पुण्यशाली हो तो एक जैसा मिले, बाकी तो मिलता नहीं है। तो क्या (है कि) एक भव बिगड़ता है। कितने भव बिगड़ते हैं? एक ही भव। अनुकूल नहीं मिले तो चला लेता है, निभा लो, निभा लो, निभा लो, ये पूरी करो जिंदगी। विवाह-विच्छेद नहीं करना, निभा लो! तो एक भव बिगड़ा। कितने भव बिगड़े? एक भव। अच्छा! धर्म की परीक्षा नहीं की तो अनंत भव बिगड़ जायेंगे। हाँ! धर्म के लिए तो बराबर

परीक्षा करनी चाहिए और परीक्षा करने की शक्ति आपके पास है।

आप कहते हैं कि मुझे संस्कृत (नहीं आती)। संस्कृत की जरूरत नहीं है। वीतरागभाव से धर्म होता है, राग से तीन काल में धर्म होता नहीं है। कोई राग की क्रिया बतावे तो धर्म नहीं है, (वो) अधर्म है। सीधी बात है! आहाहा! ऐसे परीक्षा हो सकती है। हमने भी परीक्षा की थी। परीक्षा करके हमने गुरुदेव को अपनाया। समझे? तो इधर आचार्य महाराज...

मुमुक्षु: आपके प्रश्न क्या थे? बीस प्रश्न जो आपने किये मुनि विद्यानंदी से?

पू. लालचंदभाई: बीस प्रश्न में ऐसा प्रश्न था...

मुमुक्षु: विद्यानंदी जी से नहीं, वर्णीजी।

पू. लालचंदभाई: वर्णीजी महाराज! वर्णीजी महाराज ईसरी में थे, अभी तो स्वर्गवास हो गया (उनका)। वो क्षुल्लक थे, क्षुल्लक थे और बड़े विद्वान-प्रसिद्ध; ये सारे समयसार की संस्कृत-टीका मुखपाठ (थी), उनको (शास्त्र) खोलना नहीं पड़े, इतने विद्वान!

उनको प्रश्न किया था कि भैया कार्य होता है (तो) उपादान से होता है कि निमित्त से होता है? उन्होंने कहा कि भैया, एक कार्य में दो कारण होते हैं; अकेला उपादान से नहीं होता है, निमित्त भी चाहिए। मिट्टी में से घड़ा होता है न, घड़ा?

मुमुक्षु: माने ऐसा उत्तर (मिला) कि चाहिए निमित्त। महाराज जी का ऐसा उत्तर मिला कि चाहिए निमित्त।

पू. लालचंदभाई: निमित्त चाहिए, उनका वजन वहाँ था। समझे आप? यथार्थ नहीं था। कार्य उपादान से होता है, उस समय अनुकूल निमित्त (उपस्थित) होता है। निमित्त (उपस्थित) होता है मगर निमित्त से होता है, वो बात ऐसी नहीं है। तो तो उपादान पराधीन हो गया, हाँ! तो तो एक तीर्थंकर भगवान मिलें अपने को (तो) सारे जगत को मोक्ष पहुँचा देवें। बड़े निमित्त हैं वो तो। आप भी गये थे हो! तीर्थंकर भगवान की वाणी आपने सुनी है। आपको याद नहीं है बाकी सुनी है आपने। आहाहा! सबने सुनी है।

मुमुक्षु: हाँ! तो निमित्त-प्रधान बतलाया।

पू. लालचंदभाई: हाँ! (ऐसा) बतलाया हमको (लेकिन) हमको जची नहीं वो बात। मैं तो मौन रहा। (तो पूछा कि) आपको कुछ कहना है? मैंने कहा, 'नहीं! मैं तो प्रश्न का उत्तर सुनता हूँ। कोई मेरे को चर्चा करना नहीं (है)।'

मुमुक्षु: दो द्रव्यों के बीच में डाल दिया।

पू. लालचंदभाई: हाँ! (उनका) एकत्व कर दिया, पराधीन कर दिया उपादान को; स्वाधीन नहीं रखा। आहाहा!

दूसरा प्रश्न ऐसा किया कि जब अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को प्रथम उपशम सम्यग्दर्शन होता है, प्रथम... आपको नहीं अभ्यास है, क्या करें? आहाहा!

क्या करते हो आप? व्यापार करते हो कि service (नौकरी)?

मुमुक्षु: हम रेल चलाते हैं साहब! ड्राइवर हैं।

पू. लालचंदभाई: ड्राइवर हैं। रेल्वे? रेल्वे का इंजन? इंजन चलाते हैं? अच्छा! हाँ! तो थोड़ा समय निकालकर इतना स्वाध्याय करना चाहिए, सीखना चाहिए। अपने आत्मा का हित करने के लिए थोड़ा एक ऐसा काम (के लिए) समय निकालना चाहिए। समय मिलता है रुचि वालों को। रुचि नहीं है आपको, रुचि हो तो समय मिले।

मुमुक्षु: समय मिलता है लेकिन समझ कम आता है।

पू. लालचंदभाई: अच्छा! नहीं! समझने का प्रयत्न नहीं करते हो। समझने का प्रयत्न करो, आज थोड़ा समझे, कल ज्यादा समझोगे। इसमें क्या है? समझ में आ जायेगा; नहीं आयेगा, ऐसा नहीं है। आप आत्मा हैं।

मुमुक्षु: आत्मा-आत्मा सुनता रहता (हूँ), पढ़ने की भी कोशिश करता हूँ लेकिन कुछ समझ नहीं आता है बराबर।

पू. लालचंदभाई: ठीक है।

तो बात ऐसी है कि दूसरा प्रश्न मैंने कहा, बहन जी! कि उपशम सम्यग्दर्शन होता है अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को, प्रथम, तो उसमें निर्विकल्पध्यान में होता है कि सविकल्पदशा में? ऐसा मैंने प्रश्न किया? तो उन्होंने कहा (कि) भैया! मिश्र अवस्था है। चौकड़ा (cross लगा दिया मैंने); शून्य नहीं, चौकड़ा (cross) हो गया।

मुमुक्षु: क्योंकि उपशम सम्यक्त्व भी निर्विकल्प अवस्था में (होता है)। उपशम सम्यग्दर्शन निर्विकल्पदशा में होता है।

पू. लालचंदभाई: होता है। हाँ! आपने ऐसा जवाब दिया मगर उन्होंने ऐसा जवाब नहीं दिया। गणेशप्रसाद वर्णीजी, प्रसिद्ध व्यक्ति। आहाहा! समाज में किसी को पूछो (तो कहे) प्रसिद्ध व्यक्ति, विद्वान, त्यागी, कषाय की मंदता, सज्जनता, सरलता, बहुत गुणवाले, ऐसे (वैसे) नहीं। हाँ! बाह्य का आचरण यथार्थ। तो भी तत्त्व नहीं है तो आचरण (का) क्या करें बहन? वो तो स्वर्ग देगा, मोक्ष नहीं देगा। सदाचरण स्वर्ग जरूर देगा यानि स्वर्ग में जाकर दुखी होगा। क्या कहा?

मुमुक्षु: स्वर्ग में जाकर दुखी होगा?

पू. लालचंदभाई: क्योंकि चारगति दुखरूप हैं बहन। सुखरूप हैं?

मुमुक्षु: नहीं! अपने को जाने बिना दुख की...

पू. लालचंदभाई: अपने को जाने बिना दुख की निवृत्ति होती नहीं है। थोड़ा अभ्यास करो भैया। भैया करो, करो! समझ में आ जायेगा, आ जायेगा। आपके घर में हैं, पूछना उनको। थोड़ी देर गुरु बना लेना, थोड़ी देर। समझ गए? धर्म पत्नी होने पर भी जब स्वाध्याय में बैठो, 'मेरे को समझाओ' ऐसा कहना; तो वो समझायेंगी थोड़ा-थोड़ा, ख्याल है उनको तत्त्व का थोड़ा-थोड़ा।

प्रथम, श्रुतज्ञानके अवलम्बनसे ज्ञानस्वभाव आत्माका निश्चय करके, बाद में क्या करना? कि **आत्माकी प्रगट प्रसिद्धिके लिये,** वो प्रगट प्रसिद्धि नहीं थी निर्णय में, परोक्ष थी। निर्णय आया मगर अनुभव हुआ नहीं, परोक्ष ज्ञान है, मानसिक ज्ञान है। और अतीन्द्रियज्ञान के द्वारा आत्मा का अनुभव होता है। इंद्रियज्ञान ज्ञान नहीं है, बहन जी, ज्ञेय है। इंद्रियज्ञान ज्ञेय है, ज्ञान (नहीं है)। शास्त्रज्ञान

ज्ञान नहीं है, शास्त्रज्ञान ज्ञान नहीं है; ज्ञेय है, बहन। आत्मा का ज्ञान, वो ज्ञान है कि जो आत्मा को प्रसिद्ध करे।

ऐसी बात बताते हैं कि **आत्माकी प्रगट प्रसिद्धि**, अभी अनुभूति की बात कहते हैं। **प्रगट प्रसिद्धिके लिए,** अभी क्या करना आत्मा का अनुभव करने के लिए? आहाहा! ये शुरुआत की बात है। L.L.B. की बात नहीं है। हाँ!

मुमुक्षु: सर्वप्रथम!

पू. ललचंदभाई: सर्वप्रथम, प्रथम शब्द आपको बताया न? लिखा है इसमें, संस्कृत में भी है। आप घर जाकर १४४ गाथा पढ़ लेना, १४४।

मुमुक्षु: करते तो हैं अध्ययन पर उतनी सूक्ष्मता में नहीं पहुँच पाये हैं।

पू. लालचंदभाई: वो आत्मा का ज्ञान सूक्ष्म क्यों नहीं होता है? उसके अंदर शल्य है (की) कुछ करना, कुछ करना, कुछ करना; जानना, जानना, जानना नहीं आता है; करना, करना, करना (आता है)। मैं जाननहार हूँ, जाननहार हूँ - ये नहीं आता है; मैं करनेवाला हूँ, ये करना, ये करना, ये करना, कुछ तो करना चाहिए न, कुछ तो करना चाहिए, किये बिना धर्म नहीं होता है। आत्मा का ज्ञान करने से धर्म होता है, वहाँ भी 'करना' आया। 'करना' नहीं आया? आत्मा का ज्ञान 'करो'। जरूर आत्मा का ज्ञान करो, वो भी 'करना' है न, एक अपेक्षा से? कोई करना-करना पूछे (तो कहना) कि आत्मा का ज्ञान (और) आत्मा का श्रद्धान करना, बस, ऐसा करो न। आहाहा!

आत्माकी प्रगट प्रसिद्धिके लिये, पर पदार्थकी प्रसिद्धिकी कारणभूत जो इन्द्रियों द्वारा और मनके द्वारा प्रवर्तमान बुद्धियाँ उन सबको मर्यादामें लाकर आहाहा! क्या फरमाते हैं? कि आत्मा का अनुभव करने के लिए जो पाँच इंद्रिय का फैलाव होता है इसको जानूँ, इसको स्पर्श करूँ, रस करूँ, सूँघूँ, ऐसे-ऐसे पाँच इंद्रिय तरफ, परज्ञेय तरफ (उपयोग) जाता है; **ज्ञेय से ज्ञेयान्तर** (अष्टपाहुड, शील पाहुड़ गाथा ३९), **ज्ञेय ज्ञेयान्तर** उपयोग जाता है, तो पाँच इंद्रिय और छठवाँ मन - उन दोनों को - पाँच और छठवें मन को, जो पर की प्रसिद्धि करता है, आत्मा को तिरोभूत करता है इंद्रियज्ञान, अभी उस इंद्रियज्ञान को समेटकर आत्मा के अभिमुख कर ले। आहाहा! ये process बताते हैं।

आत्माकी ... पर पदार्थकी प्रसिद्धिकी कारणभूत ... प्रवर्तमान बुद्धियाँ उन सबको मर्यादामें लाकर जिसने मतिज्ञान-तत्त्वको आत्मसन्मुख किया है यानि मतिज्ञान है वो जो परसन्मुख था, वो 'मैं पर को जानता नहीं हूँ, मैं जाननहार को जानता हूँ' ऐसा विचार आया तो मतिज्ञान आत्माभिमुख हो गया। परसन्मुख था, वो आत्म-उन्मुख हो गया ऐसा।

जिसने मतिज्ञान-तत्त्वको आत्मसन्मुख किया है ऐसा, तथा जो नाना प्रकारके नयपक्षोंके आलम्बनसे होनेवाले अनेक विकल्पोंके द्वारा आकुलता उत्पन्न करनेवाली श्रुतज्ञानकी बुद्धियोंको भी मर्यादामें लाकर श्रुतज्ञान-तत्त्वको भी आत्मसन्मुख करता हुआ, क्या कहा? कि नय के विकल्प में आया कि - राग से मैं भिन्न हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ, अभेद हूँ, टँकोत्कीर्ण एक ज्ञानानंद परमात्मा हूँ - ऐसा जो विकल्प उत्पन्न होता है श्रुतज्ञान के द्वारा, मन के संग से जो विकल्प उत्पन्न होता

है, आत्मा का विचार! आत्मा का विचार दुखदायक है। आत्मा का जो विकल्प उठा न, उस विकल्प का फल तो दुख है। हें?

मुमुक्षु: विकल्प दुखदायक है।

पू. लालचंदभाई: दुखदायक है, विकल्पमात्र दुखदायक है। ऐसा जो विकल्प उठता था श्रुतज्ञान के द्वारा, मन के द्वारा, आत्मा का विचार उठता था, वो नय का विकल्प है, वो शुद्धनय का विकल्प है; शुद्धनय नहीं है। शुद्धनय का विकल्प, शुद्धात्मा का विकल्प। जैसा शुद्धात्मा है वैसा विचार करता है, वो भी विकल्प दुखदायक है - ऐसा लिखा है, दुखदायक है। आत्मा का विचार दुखदायक है तो वो पुण्य की क्रिया सुखदायक होगी? वो तो स्थूल है! आहाहा!

पुण्य का भाव आता है मगर मैं उसका जाननेवाला हूँ, करनेवाला नहीं - इतना रखना बस। पुण्यभाव तो आता है। आर्यजीव को दया, दान, करुणा, कोमलता का भाव, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का भाव आता है। आता है और बात; और मैं करनेवाला हूँ, और बात है। दो बात में आसमान - जमीन का फर्क है, पूर्व-पश्चिम का फर्क है, अँधकार और प्रकाश जितना फर्क है; एक जाननेवाला रहता है और एक करनेवाला बन जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु: करनेवाला महा-मिथ्यात्वी है।

पू. लालचंदभाई: संसारी है - मैं करनेवाला हूँ; और दूसरा ज्ञानी होता है- आता है, मैं जानता हूँ, करनेवाला मैं नहीं हूँ, पर्याय का कर्ता पर्याय है, मैं करनेवाला नहीं हूँ।

ऐसे **श्रुतज्ञान-तत्त्वको भी आत्मसन्मुख करता हुआ, अत्यन्त विकल्परहित होकर,** अभी अनुभव हुआ। अनुभव की process बताई। **अत्यन्त विकल्प**, जो शुद्धात्मा का विकल्प आता था उसको भी छोड़ देता है। आत्माभिमुख हुआ तो वो विकल्प छूट जाता है।

तत्काल निज रससे ही चैतन्य रस से, आनंद रस से, **प्रगट होनेवाले, आदि-मध्य-अन्तसे रहित, अनाकुल, केवल एक, सम्पूर्ण ही विश्व पर मानों तैरता हो ऐसे अखण्ड प्रतिभासमय, अनन्त, विज्ञानघन, परमात्मारूप समयसारका जब आत्मा अनुभव करता है** आहाहा! सब विकल्प छोड़कर अपना जो शुद्धात्मा नित्यानंद परमात्मा है, उसके अभिमुख उपयोग लाकर उसको जब, समयसार को अनुभव करता है, समयसार यानि शुद्धात्मा - जो भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म से रहित ऐसा शुद्धात्मा, उसका जब आत्मा आत्माभिमुख होकर अनुभव करता है, **उसीसमय** उस ही समय **आत्मा सम्यक्तया दिखाई देता है** आहाहा! उस समय आत्मा का अनुभव होता है तभी सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! **और ज्ञात होता है**, श्रद्धान में आता है और जानने में आता है। श्रद्धा में भी आया और जानने में भी वो आया। **इसलिये समयसार ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।** आहाहा! आखिर में कहा कि जो शुद्धात्मा है वो ही सम्यग्दर्शन वो ही सम्यग्ज्ञान है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से कोई शुद्धात्मा अलग नहीं है। शक्कर और शक्कर की मिठास, एक ही पदार्थ है, मिठास कहो कि शक्कर कहो एक ही बात है, अलग चीज नहीं है। आनंद आया, आनंद आया - अतींद्रिय आनंद; तो आनंद आया उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान है, तो वो आत्मा ही है। आत्मा का परिणाम कहो कि आत्मा; अभेदनय से आत्मा है, भेदनय से द्रव्य और पर्याय है। तो अभेद का अनुभव होता है तब

उसको सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता है।

भावार्थ पण्डितजी ने लिखा है, जयचंद पण्डितजी ने।

मुमुक्षु: ये शब्द आया **प्रगट प्रसिद्धि** ये उसके ऊपर जरा...

पू. लालचंदभाई: **प्रगट प्रसिद्धि** यानि पहले निर्णय किया। पहले आत्मा की प्रसिद्धि नहीं थी, प्रगट नहीं थी, परोक्ष थी। जैसा आत्मा था वैसा लक्ष में लिया था। मगर अभी प्रगट साक्षात् प्रत्यक्ष अनुभूति करने के लिए उसका जो ज्ञान (यानि) इंद्रियज्ञान बाहर जानने में जो जाता था, उसको रोक दिया, वैक्यूम-ब्रेक लगा दिया। जैसे विष्णुकुमार कभी-कभी वैक्यूम-ब्रेक लगाते हैं इंजन पर, कभी ऐसा accident (दुर्घटना) न होवे, तो जल्दी वैक्यूम-ब्रेक (लगाते हैं)। ऐसे मैं पर को जानता नहीं हूँ, मेरे ज्ञान में तो ये ज्ञायक जानने में आ रहा है। ऐसी पर की जो प्रसिद्धि थी, वो अपनी प्रगट प्रसिद्धि करने के लिए इंद्रियज्ञान को रोक देता है कि 'मैं पर को जानता नहीं हूँ, मैं तो जाननेवाले को जानता हूँ'। जाननेवाला मेरा आत्मा उसका मैं जाननहार हूँ। तो वहाँ से इंद्रियज्ञान फैला था बाहर, वो समेटा; समेटा समझे? समेट लिया और ज्ञान अभिमुख होता है आत्मा के। मेरे **उपयोग में** तो **उपयोग** है (समयसार गाथा १८१-१८३)। उपयोग में तो ज्ञायक है, उपयोग में राग नहीं है। जानन-क्रिया में जानन-आत्मा है - ऐसा विचार करते-करते-करते एक समय ऐसा आता है कि निर्विकल्पध्यान में आ जाता है, तो प्रगट प्रसिद्धि हो जाती है।

इंद्रियज्ञान आत्मा को प्रसिद्ध नहीं करता था। अभी इंद्रियज्ञान रुक गया, अतीन्द्रियज्ञान नया प्रगट हुआ, वो नया प्रगट होता है, अज्ञानी के पास नहीं है (अतीन्द्रियज्ञान)। नया प्रगट होता है - श्रुतज्ञान, भावश्रुतज्ञान प्रगट होता है, उसके द्वारा आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। ये गृहस्थ अवस्था में होता है, इसके लिए दीक्षा लेने की जरूरत नहीं है। सम्यग्दर्शन के लिए नहीं है, चारित्र के लिए दीक्षा होती है। वो स्थिरता-लीनता के लिए वो दीक्षा होती है। बाकी सम्यग्दर्शन के लिए गृहस्थ अवस्था में, आपने प्रथमानुयोग पढ़ा होगा, प्रथमानुयोग में तो आता है कि वो सम्यग्दृष्टि होता है गृहस्थ अवस्था में। हो जाता है, उसमें कोई शंका नहीं है। समझे? तो गृहस्थ अवस्था में पहले सम्यग्दर्शन की प्रगटता का विचार करना। बस!

प्रगट प्रसिद्धि, यानि परोक्ष प्रसिद्धि थी, अभी प्रगट हो गई। परोक्ष में (से) अभी प्रत्यक्ष होता है।

मुमुक्षु: माने प्रत्यक्ष (मतलब) आत्मा के सन्मुख हो गया और परोक्ष इंद्रियों के (सन्मुख)?

पू. लालचंदभाई: हाँ! परोक्ष तो इंद्रिय का धर्म है, आत्मा का धर्म नहीं है। आत्मा का ज्ञान नहीं है वो परोक्ष आत्मा; क्योंकि परोक्ष तो चला जाता है। इंद्रियज्ञान तो चला जाता है। अरिहंत भगवान, सिद्ध भगवान के पास कहाँ इंद्रियज्ञान है? बस! नहीं है, चला गया। तो अपनी श्रद्धा में से चला जाता है पहले। श्रद्धा में से चला जाता है कि मेरा स्वरूप वो नहीं है तो आत्मा का अनुभव होता है। बहन ने लिख दिया बहुत, अच्छी बात है। अध्ययन करना घर जाकर। Time (समय) हो गया।

विष्णुकुमारजी, ये साथ में आयेगा, वो पैसा साथ में नहीं आयेगा आपके। आहाहा!

मुमुक्षु: ये साथ में जायेगा?

पू. लालचंदभाई: कौन?

मुमुक्षु: धर्म की बात।

मुमुक्षु: धर्म साथ में जाएगा?

पू. लालचंदभाई: धर्म है न, आपका ज्ञान है न, आपके साथ जाएगा। ज्ञान आपके साथ जायेगा, बाकी कोई साथ में आपके आनेवाला नहीं है।

मुमुक्षु: मंगलमय (३) रूप निहारा, मोहे परमानंद अपारा....
जानूँ मैं जाननहारा.... देखूँ मैं देखनहारा....
आवे जो आवनहारा.... जावे जो जावनहारा.... १
नहीं कुछ भी मुझे प्रयोजन, जानूँ मैं जाननहारा॥
जानूँ मैं जाननहारा.... देखूँ नित देखनहारा....
उपजे जो उपजनहारा.... विनशे जो विनशनहारा.... २
नहीं कोई प्रयोजन मुझको, जानूँ मैं जाननहारा॥
जानूँ मैं जाननहारा.... देखूँ प्रभु देखनहारा....
बंधन मुक्ति न दिखाई, मैं मुक्त स्वरूप सदा ही.... ३
ध्रुव एकरूप अविकारा.... जानूँ मैं जाननहारा।
जानूँ मैं जाननहारा.... देखूँ मैं देखनहारा....
शाश्वत चेतन भगवाना, तिहूँ लोक में अनुपम जाना.... ४
मैं ध्येयरूप सुखकारा.... जानूँ मैं जाननहारा।
जानूँ मैं जाननहारा.... देखूँ मैं देखनहारा....
जहाँ शक्ति अनंत उछलती, प्रभुता शिवरूप विलसती.... ५
बहे अखंड ज्ञानमय धारा, जानूँ मैं जाननहारा।
मैं मग्न रहूँ निज में ही.... अक्षुण सुख हो निज में ही.... ६
बस यही समय का सारा.... जानूँ मैं जाननहारा....
जानूँ मैं जाननहारा.... बस यही समय का सारा।
मंगलमयरूप निहारा मोहे, परमानंद अपारा....
जानूँ मैं जाननहारा.... देखूँ मैं देखनहारा....